कहानी

बसंत त्रिपाठी

कहानी

मैंने अपने कहानी संग्रह की पांडुलिपि उठाई और जोर से टेबिल पर पटक दी। हालाँकि मैं इसे प्रकाशक की टेबिल पर पटकना चाहता था। लेकिन प्रकाशकों ने अपने बँगलों के बाहर हर नए आगंतुक लेखकों के लिए पट्टिका टाँग रखी थी - 'कुत्तों से सावधान।' और चूँकि मैं लेखक से पहले एक सभ्य नागरिक होने की कोशिश करता हुआ आला दर्जे का चूतिया था, सो उन अदृश्य कुत्तों को चकमा देने का खयाल छोड़ दिया और घर

आ गया। मुझे बाद में पता चला कि छापेखाने तक पहुँचने का रास्ता प्रकाशकों के घरों और दफ्तरों से होकर हमेशा नहीं जाता।

लेकिन हुआ बस यूँ कि मैं लौट आया।

दरअसल मेरी कहानियाँ किसी हद तक पसंद की जाने लगी थी। जब भी छपी, ठीक-ठाक प्रतिक्रिया मिली। उन्हीं प्रतिक्रियाओं से उत्साहित होकर मैं सोचने लगा था कि अब इन्हें पुस्तक रूप दे ही दिया जाना चाहिए। यह मैं ऐसे सोच रहा था जैसे मेरे घर के दरवाजे पर प्रकाशकों की लाइन लगी हो और वे मुझसे अपनी पांडुलिपि सौंपने की गुजारिश कर रहे हों कि जनाब अब तो अपनी पांडुलिपि सौंप ही दीजिए। काश कि ऐसा होता। लेकिन यह सच है कि सपने में आजकल इससे कम तो मैं कुछ देखता ही नहीं था।

सो हुआ यूँ कि मैंने अपनी किताब की पांडुलिपि तैयार की। कहानियाँ नए सिरे से टाईप करवाकर और उन्हें एक फाईल में बंद कर प्रकाशक की ओर चल पड़ा।

पहले प्रकाशक का वाकिया तो मैंने ऊपर लिखा ही है। लेकिन भला इतनी जल्दी मायूसी के सागर में डूबकर अपनी किताब की योजना का गर्भपात नहीं करवाना चाहता था। इसलिए सारा कुछ नए सिरे से करने की प्रतिज्ञा करते हुए तमाम कार्रवाइयों को अगले दिन के लिए मुल्तवी कर मैं बिस्तर पर लंबा हो गया।

दोपहर से रात तक झुँझलाते हुए चहलकदमी करने और बेजान चीजों पर अपना गुस्सा उगलने के बाद इसके सिवाय मैं कर ही क्या सकता था?

अगले दिन मैं, जितना भी मुमकिन था, बन-ठनकर निकला। अपने शबनम झोले में, जिसे मैं क्रांतिधर्मिता का न्यूनतम प्रतीक मानता था और लेखकीय पहचान का सर्वमान्य रूपक, पांडुलिपि सहेज कर पब्लिक बस में सवार हो गया। अंदर ही अंदर मेरा आत्मविश्वास कुलबुला रहा था। लेकिन उसके ऊपर मैंने गंभीर भाव का आवरण डाल रखा था। और अब एक दूसरे दर्जे के प्रकाशक के सामने बैठा था।

'अपने समय की मुख्य पत्रिकाओं में मेरी कहानियाँ छप चुकी है, बिना पूछे ही मैं कह पड़ा था, 'किताब छापना आपके लिए घाटे का सौदा नहीं होगा।'

प्रकाशक ने मुझे यूँ देखा जैसे राह चलते टटपूँजिए को लोग हिकारत और विस्मय की मिली-जुली नजर से देखा करते हैं, 'देखिए, आखिर उसने कहा, 'सौदा, आप जैसा समझते हैं वैसा नहीं होता। तमाम और चीजों को मैं छोड़ भी दूँ तो आपकी कहानियाँ

कुल सात ही हैं।' पांडुलिपि के पन्नों को फाईल से अलग कर उसने टेबिल में रखी वजन मशीन पर रखा, 'कुल एक सौ पचपन ग्राम... यानी प्री-मेच्योर बेबी... सतमासा बच्चा...।'

'फिर दो महीने बाद आऊँ...?' मैंने पूछा।

'पांडुलिपि का वजन कम-से-कम एक सौ सत्तर ग्राम तो होना ही चाहिए, यह हमारी पहली शर्त है। दूसरी शर्त भी मैं बता दूँ कि आपकी ओर से कोई शर्त नहीं होगी। और बाकी बातें तो बाद में होगी लेकिन आपको अपनी पांडुलिपि में कम-से-कम पंद्रह ग्राम की बढ़ोतरी करनी होगी। इसका मतलब एक औसत से थोड़ी बड़ी या फिर दो छोटी कहानियाँ। हमारी ओर से समय की कोई बंदिश नहीं है। न आपके आने की और न ही पुस्तक छापने की।'

'पत्रिकाओं में छपना अलग मसला है, मेरी पत्रिका वाली बात पर वह अब जाकर आया, 'उनके तयशुदा विज्ञापनदाता और पाठक होते हैं। किसी अंक में कोई बुरी चीज छाप भी दो तो खास फर्क नहीं पड़ता। लेकिन हमारे खरीददार तो निर्धारित हैं। हमें उनके स्तर और उनकी खरीद पाने की योग्यता का खयाल रखना ही पड़ता है। खैर, इन सारे झमेलों से आप लोगों को क्या फर्क पड़ता है? आप लोग तो बच्चे पैदा कर बस निश्चिंत हो जाते हैं। अपनी रचनाओं को आप लोग अपनी संतान ही कहते हैं न! आपमें से थोड़े से लोग हैं जो बच्चे को पालने-पोसने यानी प्रचार-प्रसार की कोशिश भी करते हैं। लेकिन उनके खिलाफ तो आप लोग डंडा उठाए घूमते रहते हैं। सारी जिम्मेदारी जैसे हमारी है। आपके बच्चों को पालो-पोसो, उन्हें पढ़ाओ-लिखाओ, अच्छा इनसान बनाओ। और यदि वह कुछ बन गया तो आप लोग अपने पितृत्व का दावा करने आ जाएँगे। प्रकाशन का धंधा भी अजीब चूतियापा है।'

मुझे तमाम कमीशनखोर प्रकाशकों के, दलालों की तरह मंत्रालयों, कार्यालयों और पुस्तकालयों का चक्कर लगाते हुए एजेंट याद आ गए थे, जो अपने मालिकों की ओर से पचास प्रतिशत तक की कमीशन की पेशकश करते थे। मैं इस बाबत बोलना ही चाहता था कि मुझे अपने अग्रज और असफल लेखक की शराब में डूबी हुई समझाइश याद आ गई - 'यदि इस दुनिया में नाम कमाना है तो आलोचक और प्रकाशक, इन दोनों के खिलाफ कभी कुछ मत कहना। लेकिन अपने से वरिष्ठ और स्थापित लेखकों के खिलाफ लगातार कुछ कहते रहना। जरूरी नहीं कि बात हमेशा तार्किक हो... इस दुनिया में अनर्गल बातों का भी विशेष महत्व है', सो मैंने चुप रहना ही बेहतर समझा

और मुस्कुराहट की मोटी परत अपने चेहरे पर पोत ली ताकि अंदर का क्षोभ चेहरे की दरारों से बाहर न झाँकने लगे।

फिर मैंने पांडुलिपियों के भाग्य-निर्धारक उस महान वजन मशीन को देखा। प्रकाशक की टेबिल के बाईं ओर आसन जमाए हुए वह बैठी थी।

'हर पांडुलिपि को छपने से पहले इन मशीनों की जाँच-विधि से उत्तीर्ण होकर निकलना पड़ता है, प्रकाशक कह रहा था, 'आपकी पांडुलिपि तो खैर, पहली ही मशीन से ओ.के. का सर्टिफिकेट नहीं ले पाई। यदि कोई पांडुलिपि इस स्टेज को पार कर लेती है तो हम उसे अगली मशीन में डालते हैं जो अलग-अलग तत्वों के आँकड़े देती है यानी विचार, कला, विषय, भाषा, समाज आदि की प्रतिशत मात्रा बताती है। उसके बाद वाली मशीन लेखक के जन-संपर्क यानी संभावित खरीद का दायरा बताती है। इस मशीन में हर लेखक के संपर्क-अभियान, संवाद, वरिष्ट और समकालीन लेखकों से संबंध और मोबाइल फोन के बिल संबंधी विस्तृत जानकारियाँ फीड है। यह हमारा सीक्रेट सॉफ्टवेयर है। और भी कुछ मशीनें हैं लेकिन उसके बारे में फिलहाल मैं आपको बता नहीं सकता। यह हमारा 'ट्रेड सीक्रेट' है। आप लेकिन इतना जान लीजिए कि हमारे प्रतिमान पूर्व-निर्धारित और अपरिवर्तनीय हैं।'

प्रकाशक खुद को ढीला छोड़ते हुए कुर्सी की पीठ से टिक गया, 'यदि आपको जाँच के इस दीर्घ और जोखिम भरे गलियारे से नहीं गुजरना है तो एक रास्ता और है उसे शर्माजी समझा देंगे। लेकिन आजकल वो जरा व्यस्त रहते हैं। दरअसल संपादकों ने युवा विशेषांक निकाल-निकालकर छपास की ऐसी भूख पैदा कर दी है कि नए से नए लेखक के पास भी किताब भर की रचनाएँ तो हैं ही। और हर कोई जल्द से जल्द अपनी पुस्तक छपा लेना चाहता है। आप समझ सकते हैं कि स्थिति कितनी विकट है। ऐसे में हमारे शर्माजी किताब छपवाने का घोषित रहस्य सबको अलग-अलग अकेले में बताते हैं। आप चाहें तो उनसे भी मिल सकते हैं।'

मैं जानता था कि शर्माजी पुस्तक छपवाने का कौन-सा महान रहस्य बताते हैं इसलिए तुरंत बोल पड़ा - 'शर्माजी से मिलने की बजाय मैं मशीनों की जाँच-प्रक्रिया से गुजरना ही बेहतर समझता हूँ। लेकिन मेरी पहली चिंता तो पंद्रह ग्राम वजन की कोई कहानी लिखना है। उसके बाद आपसे मिलता हूँ। बहुत-बहुत धन्यवाद।' मेरे जवाब से वह थोड़ा खिन्न लगा। जैसे दस-बीस हजार का कोई असामी उसके हाथ से निकल गया हो। लेकिन मैंने उसकी खिन्नता को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया और प्रकाशक के कार्यालय से बाहर निकलकर सड़क के दूसरी ओर स्थित रचनामंडी में घुस गया।

मंडी में कहानियों और कविताओं की भरमार थी। मंडी की सँकरी गलियों में वे इतनी तेजी से इधर-उधर भाग रही थीं कि उन्हें पकड़ना आसान नहीं था। फिर भी बीसियों रचनाकार अपना फंदा डाले हुए सड़क के किनारे व्यग्रता से बैठे हुए थे और उन्हें जब-तब फाँस ही लेते थे। बीच-बीच में महानगरपालिका का कोई गुमाश्ता आ जाता तो मंडी में हड़कंप मच जाती। रचनाकार बेचारे अपना झोला-डंगर उठाकर भागने लगते। भागते-भागते भी कोई न कोई तो पकड़ा ही जाता और गुमाश्ता उनकी कहानियों और कविताओं को चींथ डालता। था तो वह अदना-सा गुमाश्ता, लेकिन ऐसे तन कर चलता जैसे शहंशाहे हिंदुस्तान हो।

ऐसी गहमा-गहमी में चर्चित होने की बीमारी से ग्रस्त कुछ स्थापित और रेहड़ीनुमा रचनाकार उसके पीछे भी हो लेते थे। अपने पीछे बहुत चलाने के बाद गुमाश्ता उनके झाँसे में आई हुई रचनाओं को उलट पलटकर देखता और अचानक अदृश्य हो जाता। रचनाएँ बेचारी कोसती रह जाती कि ऐसे टटपूँजिए रचनाकारों के झाँसे में आई ही क्यों? उपन्यासों की चाल में लेकिन जरा-सा इत्मीनान था। वे भारी भरकम भी थे इसलिए उन्हें फाँसने का सीधा अर्थ होता देर तक निबाह। एक तो वे जल्दी झाँसे में आते नहीं और आ गए तो जल्दी पीछा छोड़ते नहीं। कौन ऐसी मुसीबत मोल ले?

कहने को तो वह मंडी एक ही थी लेकिन हर गली अपने आप में एक जुदा दुनिया थी। एक गली बहुत साफ सुथरी थी जहाँ आला दर्जे की बेदाग रचनाएँ इत्मीनान से टहल रही थीं। एक गली में हर बिकने वाली चीज लाल रंग के पैकेट में बेची जा रही थी। एक लोक गली भी थी। वहाँ घूमने वाली रचनाएँ धान या गेहूँ की बाली, बैल की घंटी के साथ कुछ ग्रामीण शब्दों का फुँदना लगाए इधर-उधर डोल रही थीं। एक अवसाद गली भी थी। यहाँ कवियों की आवाजाही अधिक थी। खा पीकर अघाए हुए कवि डकारते हुए इतने आँसू बहा रहे थे कि जलजला आ जाने का खतरा आन पड़ा था। युवा लेखकों ने अपना एक अलग डिपार्टमेंटल स्टोर खोल रखा था। यहाँ की कहानियों के पास मोबाइल, कंप्यूटर, लैपटॉप, आला दर्जे के जींस और टी शर्ट अत्यधिक मात्रा में थे। इसी स्टोर के बरक्स दूसरी युवा मंडली ने भी अपनी दुकान खोल रखी थी। दोनों मंडली के लोग बात-बेबात आपस में भिड़ पड़ते थे जिससे मंडी में घूमने वाले लोगों का अच्छा खासा मनोरंजन हो जाता था। इन दोनों ही दुकानों के लिए कुछ बूढ़े रचनाकारों ने लीज पर जमीन उपलब्ध करवाई थी।

दो और दिलचस्प गलियाँ थीं। एक का नाम स्त्री गली था और दूसरे का नाम था दलित गली। यहाँ की कहानियाँ रबर के मोटे और लचीले डंडे हाथ में लिए चलती थीं और हर आने जाने वाले लोगों पर इस तरह से प्रहार करतीं कि शरीर की टूट फूट तो नहीं होती

लेकिन उस पर नीले निशान जरूर उभर आते। ऐसे निशान बाद में शरीर छोड़कर आत्मा जैसी किसी अनजान जगह में रहने लगते थे। इन गलियों में केवल स्त्री और दलित ही आ जा सकते थे। गली के मुहाने पर एक स्कैनिंग लेजर मशीन भी लगी थी। यदि कोई अपनी पहचान छुपाकर भीतर घुसने की कोशिश करता तो बीप् बीप् की आवाज बजने लगती।

बाकी सब गलियों में ब्राह्मणों और ठाकुरों का राज था। लेकिन यहाँ उनकी पैठ नहीं थी। इसलिए वे इन गलियों के धुर विरोधी थे और अक्सर ही इन गलियों को मटियामेट कर दिए जाने की बात करते थे। कुछ पुरुषों और ऊँची जात वाले लोगों को भी बहुत मान-मनुहार के बीच यहाँ आने जाने की सुविधा मिल गई थी। शर्त बस यही थी कि उन्हें बात-बेबात, वक्त-बेवक्त अपनी निष्ठा प्रदर्शित करनी पड़ती थी।

रचना मंडी का व्यापक सर्वेक्षण कर लेने के बाद मैं किसी एक कहानी को फाँस लेने की मुहिम में जुट गया। पिछली सात कहानियों को फाँसने में ज्यादा दिक्कत नहीं हुई थी। बल्कि वे खुद ही मेरी झोली में आ गिरी थी। सो मैं ऐसी ही किसी चमत्कारिक घटना की उम्मीद में इस बार भी आया था लेकिन मामला कुछ जम नहीं पा रहा था।

मैंने रचना मंडी में ही किराए का एक मकान ले लिया था ताकि आने जाने की परेशानी से मुक्ति मिले। सुबह से शाम तक मैं वहाँ मारा मारा फिरता रहता । इस बीच कुछ कहानियों से दोस्ती भी हुई लेकिन कुछ देर समय गुजारने के बाद पता चला कि उनमें कोई दम नहीं था। वे अंदर से खोखली थीं और इतनी कमजोर कि चलना तो दूर बिना सहारे के खड़ी भी न हो पाती थीं।

जब बहुत मशक्कत के बावजूद कोई कहानी मेरे झाँसे में नहीं आई तो मैं मंडी के पिछवाड़े की ओर निकल आया। पूरी मंडी चूँकि मोटी और ऊँची दीवारों के भीतर थी इसलिए बाहर की दुनिया का ठीक ठीक अंदाजा नहीं हो पा रहा था। मैं हताशा से भरा हुआ इस ओर चला आया था। न सही कहानी, कुछ फुर्सत की साँसें तो मिले। पिछवाड़े की ओर एक टूटा-फूटा लगभग गिरता गिरता-सा शराबखाना था। वहाँ इक्के दुक्के लोग बैठे थे और चुपचाप पी रहे थे। शराबखाना किसी रूसी उपन्यास के जर्जर पन्ने की तरह लग रहा था।

मैं भीतर गया और एक कोने में मक्खियों से भिनभिनाती टेबल के सामने की कुर्सी खींचकर बैठ गया और रम के एक क्वार्टर का ऑर्डर दे दिया।

'इस शराबखाने को किसी टी.बी. वार्ड के पीछे होना चाहिए था।'

'सही सोच रहे हैं आप, वेटर ने रम का क्वार्टर टेबल पर रखते हुए कहा, 'पानी सादा लाऊँ या...'

'बिसलरी...', उसका वाक्य पूरा होने से पहले ही मैं कह पड़ा।

मैं कुछ और सोचने की शुरुआत करता कि वह पानी का बोतल, गाजर-ककड़ी के कुछ टुकड़े और बड़े से कटोरे में मुरमुरा लाकर रख दिया और काउंटर के पास जाकर खड़ा हो गया।

'शराबखाना गंदा और उपेक्षित जरूर है लेकिन रचना मंडी की अनियंत्रित दौड़-भाग, कॉफी हाऊस और चमकते बार की तुलना में यहाँ इत्मीनान है...', एक साँस में गिलास खाली करते हुए मैंने सोचा।

'फिर भी आप लोग यहाँ आने से कतराते हैं। बल्कि साफ कहूँ तो बचते हैं। क्या है कि यहाँ आपके शहीदाना फक्कड़पन को नोटिस में लेकर पन्ने रँगने वाले लोग नहीं आते हैं न...?' उसने काउंटर के पास से ही कहा।

'अजीब है ये वेटर। मेरे सोचे हुए वाक्यों से संवाद बना रहा है।' उसके चेहरे पर अपनी नजरें गड़ाते हुए मैंने सोचा।

हल्की मुस्कुराहट उसके चेहरे पर उभर आई थी जिसके कारण उसकी आँखें बंद-सी हो गई थीं, 'अपन तो ऐसे ही हैं...', वहीं से उसने फिर कहा था।

शराबखाने में जो इक्के दुक्के लोग बैठे थे, वे अब नहीं थे। मैंने वेटर को गौर से देखा। वह निश्चित तौर पर कोई पहाड़ी था। छोटा चपटा चेहरा, छोटी-छोटी आँखें। कद-काठी भी पहाड़ियों जैसी ही। उसकी उम्र पचास के आस-पास रही होगी। हालाँकि पहाड़ी लोगों की उम्र का अंदाजा लगाना आसान नहीं होता।

'कितना अच्छा होता यदि मक्खियों और मच्छरों के इस निर्विकल्प साथ के अलावा किसी इनसान का साथ भी मिल जाता। वैसे यह वेटर भी बुरा विकल्प नहीं है।' मैं सोच ही रहा था कि वह अपना गिलास भरकर ले आया और मेरे सामने की कुर्सी खींचकर बैठते हुए कहा - 'थैंक यू...'

'आप पहाड़ी ही हैं न?' मैंने सीधा उससे पूछा क्योंकि मेरे सोचे हुए वाक्यों पर अपने जवाबों से वह जो हमला कर रहा था उसके कारण मैं तनिक दबा-दबा-सा महसूस

करने लगा था। इसलिए मन की जबान से कहने की बजाय मैंने सीधे ही कहा। बाकायदा होंठ, दाँत और जीभ का वांछित उपयोग करते हुए।

'क्या फर्क पड़ता है? आप एक इनसान का साथ चाहते हैं। वह पहाड़ी हो या मैदानी, देशी हो या विदेशी, औरत हो या आदमी, क्या फर्क पड़ता है?'

'आपकी बात सही है लेकिन बात कहीं से तो शुरू होनी चाहिए। इसलिए आपके पहाड़ी होने से ही शुरू हो तो क्या बुरा है?'

उसके रट-पिट जवाब देने से मैं थोड़ा असहज हो गया था। फिर भी अपनी खीज छुपाते हुए और पर्याप्त शालीनता का परिचय देते हुए मैंने कहा। मेरी शालीनता ने उस पर थोड़ा रंग जमाया भी था क्योंकि उसके चेहरे की व्यंग्य-मिश्रित बूढ़ी लकीरें पिघलने लगी थीं।

'हाँ मैं पैदा तो पहाड़ में ही हुआ था। लेकिन अब मैदानों में रहता हूँ। और अक्सर अपनी जगह बदलता रहता हूँ।' वह फिर चुप हो गया था। उसकी चुप्पी ने पहाड़ी वाले प्रसंग पर पूर्ण विराम लगा दिया था।

'लगता है कोई कहानी आज आपकी पकड़ में नहीं आई**?'** उसने मेरे घाव पर नमक का बुरादा छींटा।

'आज..., मैं मायूस हँसी के साथ बोला, 'पिछले सात दिनों से लगातार यहाँ भटक रहा हूँ... लेकिन कहानी तो कहानी कोई लघुकथा भी हाथ नहीं लगी। लगता है वायदा बाजार की तर्ज पर सारी कहानियाँ बुक हो चुकी हैं।'

'हो सकता है कि वे पूरी तरह आजाद हों। आप ही उन्हें पहचान न पा रहे हों। हो सकता है कि आप ही के भीतर कोई पूर्वाग्रह या दुराग्रह हो।'

'हो सकता है... लेकिन इस पर सोचने के लिए फिलहाल मेरे पास वक्त नहीं है। मुझे अपनी किताब के लिए एक ही कहानी की जरूरत है। यदि उसका स्तर औसत से भी थोड़ा नीचे हो, तो भी चलेगा। आखिर दुनिया के बड़े-बड़े उस्तादों ने औसत स्तर का काम किया है या नहीं?'

उसने जोर का ठहाका लगाया, 'वे उस्ताद हैं। उनका औसत काम भी तुम जैसे लोगों के महत्वाकांक्षी कामों से ज्यादा बेहतर होता है। फिर..., उसने दोनों के गिलास मक्खियों को उड़ाते हुए भरे, 'एक बेहतर रचना कई औसत रचनाओं की खामी को पूरा कर देती

है। उस्तादों की औसत रचनाओं से नहीं क्लासिक रचनाओं से सीखना चाहिए। लगता है लेखन का पहला सबक ही आपने अधूरा पढ़ा है।' हँसी फिर उसके दाँतों के बीच से निकलकर तीर की तरह मेरे चेहरे में घुस गई।

मैं सिगरेट सुलगाते हुए उसे घूर कर देखा और सोचा - 'एक पहाड़ी वेटर की रहस्यमय मौत, यह अगली कहानी का शीर्षक हो तो कैसा रहेगा?'

'हा...हा...हा..., अबकी बार वह पहले की तुलना में ज्यादा खुलकर हँसा, 'आपको किसी टी.वी. चैनल के सस्ते थ्रिलर धारावाहिक के लिए भी जरूर कोशिश करनी चाहिए। वहाँ आपका सफल होना निश्चित है।'

एक क्वार्टर और ले आओ और आधा पैकेट सिगरेट भी। खाने के लिए पकौड़े या चिली चिकन, जो भी बन सके ले आना।'

'यहाँ किचन नहीं है। मूँगदाल, भुजिया सेव या फल्ली ही मिल सकती है।'

'फिर भुजिया सेव के दो पैकेट ले आओ।'

बाहर धूप अब ढलान पर आ गई थी। दुकानों की परछाइयाँ पूरब की ओर की जगहों को घेरने लगी थीं। रचना मंडी का शोर भी उतार पर था। सौदे या तो पूरे हो चुके थे या होने की राह में थे। कुछ कहानीकारों ने अपनी फाँसी हुई कहानियों को तमगे की तरह गले में टाँग लिया था। कुछ लोग अपनी कहानियों को कंधे पर चढ़ाए हुए विजयी मुद्रा में मंडी की परिक्रमा कर रहे थे। उनके पीछे-पीछे तमाशायी लेखकों का झुंड भी था। उसमें प्रशंसक और ईर्ष्यालू दोनों ही प्रजाति के लोग शामिल थे। मंडी का गुमाश्ता विजेता कहानीकारों के नाम पते नोट कर रहा था। आखिर उसे मंडी का रचना टैक्स जो वसूलना था! मेरे जैसे कुछ असफल लेखक अपनी हताशाओं के साथ अकेले रह गए थे।

पहाड़ी वेटर रम का क्वार्टर और भुजिया सेव, सिगरेट के पैकेट के साथ रख गया था। इस बार वह मेरे साथ बैठा नहीं। मैंने भी बैठने के लिए नहीं कहा। शाम के धंधे का समय हो रहा था। मैं जानता था कि असफलता के मारे हुए लेखक कॉफी हाउस या चमकते बार में नहीं जाते। उन्हें ऐसे ही शराबखाने पनाह देते हैं।

शराबखाने की सभी लाइटें जला दी गई थीं। मक्खियों की काम की पाली खत्म हो गई थी लिहाजा मच्छरों ने दुगुने ताकत से अपना काम शुरू कर दिया था। शराबखाने में और तीन-चार लेखक और आ गए थे। सभी अपनी मायूसियों को शराब में घोलकर

पिए जा रहे थे। पहाड़ी वेटर भी रोशनी करने के बाद पीछे की ओर के दरवाजे से निकलकर जो गायब हुआ तो फिर दिखा ही नहीं। उसकी पाली भी शायद खत्म हो गई थी। अब वहाँ कुछ दूसरे वेटर दिखाई पड़ रहे थे जो ऑर्डर की हुई चीजों को टेबिल पर रखते जाते।

'इस शराबखाने को किसी टी.बी. वार्ड के पीछे ही होना चाहिए।' मैंने अपना अंतिम गिलास खाली करते हुए सोचा। कहीं से कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली। न हामी के रूप में, न हँसी के रूप में।

'बिल ले आओ...' मैंने एक युवा वेटर को चिल्लाकर कहा।

'यहाँ बिल नहीं देना पड़ता है...', शराबखाने के मैनेजर ने काउंटर से कहा। मैनेजर को मैं वहाँ पहली बार देख रहा था।

'क्यों...', मैं लड़खड़ाते हुए उसके पास पहुँचा और आश्चर्य से पूछा।

'यह असफल लेखकों की धर्मसेवा है। भगवान ने बहुत दिया है। बस समझ लीजिए कि मैं उसकी मर्जी निभा रहा हूँ। प्याऊ खोलता, धर्मशाला खोलता या मंदिरों में फल, कपड़े या खाना बँटवाता तो क्या हासिल हो जाता। आखिरकार लाचार मनुष्यों की क्षणिक सेवा होती। विद्वानों ने कहा है कि लेखक भगवान के बरोबर होते हैं। इसलिए मैं हालात के मारे हुए हताश लेखकों की सेवा करता हूँ। आप कह सकते हैं कि हताश देवताओं को बहकने का अवसर देकर मैं उनकी घायल इच्छाओं को मजबूत बनाता हूँ।' उसने दार्शनिक अंदाज में अपना महान उद्देश्य लजीज टँगड़ी कबाब की तरह परोस दिया था।

'जो पानी खरीद सकता है वह प्याऊ से मुफ्त में पानी नहीं पीता।' मैंने पाँच सौ रुपए का एक नोट काउंटर पर रखते हुए कहा।

'जिसने प्याऊ खोला है वह पानी बेचता नहीं है...', उसने विनम्रता के साथ मेरा नोट मेरी मुट्ठी में बंद करते हुए कहा, 'भगवान आपको जल्दी ही सफलता दे।'

उसकी शुभकामनाओं की बारिश में भीगते हुए मैंने उसका चेहरा देखा। टॉलस्टाय की तरह लंबी सफेद दाढ़ी वाला वह बूढ़ा भव्य देवदूत लग रहा था। शायद वह टॉलस्टाय ही था। रचना मंडी की घायल आत्माओं पर मलहम लगी रुई के फाहे रखता हुआ-सा।

'मुझे इतने भी अचरज से मत देखिए। जब आप अपने लायक कोई जबर्दस्त कहानी तलाश लेंगे, तब आप भी विजयोल्लास के घमंड में लिथड़े लेखकों के साथ जुलूस में शामिल हो जाएँगे। तब तक आप खुद को मेरा मेहमान ही समझें। और आप तो जानते हैं मेहमान और भगवान का रिश्ता... फिलहाल आप किसी कृति को रचने की कोशिश में असफल होकर हाँफ रहे लेखक हैं। हो सकता है मेरी धर्म-सेवा से आपको उम्मीद की रोशनी का कोई कतरा दिखाई पड़ जाए।'

थोड़ी देर वह चुप रहा। शायद इस इंतजार में था कि मैं कुछ कहूँगा। लेकिन मेरे पास नशे में डूबी हुई नजरों से उसे देखते रहने के अलावा और कुछ भी नहीं था।

'वैसे किस तरह की कहानी की तलाश में हैं आप**?**' उसने पूछा।

'कुछ निश्चय करके तो यहाँ नहीं आया था। बस**,** कम से कम पंद्रह ग्राम वजन की कोई कहानी चाहिए।'

टॉलस्टाय मुस्कुराया, 'रचनाकारों की रचनात्मक कामयाबियों, उनकी निजी कुंठाओं और महत्वाकांक्षाओं पर पलने वाले टटपूँजिए प्रकाशक, देखिए, आपकी भाषा में कितने ताकतवर हैं। और इस हद तक ताकतवर कि उनकी भ्रष्ट और अतार्किक शर्तें भी आप लोगों के लिए प्रतिमान बन जाती है। ...वैसे... यदि कोई भी कहानी चल जाती तो वही क्या बुरा था जिसके साथ आपने पूरी दोपहर गुजारी?'

'क्या... वह पहाड़ी वेटर... कहानी था?' मेरा सारा नशा एक ही झटके में उछलकर गायब हो गया था। मैं उस कहानी को फिर से पकड़ लेने की खातिर शराबखाने के उसी दरवाजे की ओर लपका जिसमें से अंतिम बार जाने के बाद वह गायब हो गया था। लेकिन दरवाजे के उस पार रचना मंडी के बाहर के अँधेरे के अलावा कुछ नहीं था। अँधेरा, जो बेतरह फैला हुआ था।

'अब कोई फायदा नहीं, उसने कहा, 'कहानी एक बार यदि पकड़ से छूट जाए तो वापिस झाँसे में नहीं आती। यदि आप उसे पकड़ भी लेंगे तो अब निभा नहीं पाएँगे। आप अपना अवसर खो चुके हैं। अच्छा होगा कि आप नए सिरे से कोशिश करें।'

कहानियों को न पहचान पाने के कारण पकड़ पाने में असफल होने का अनुभव मेरे लिए नया नहीं था। इससे पहले भी मैं कई बार ऐसी मूर्खतापूर्ण गलती कर चुका था। लेकिन यह मामला इस रूप में नया था कि मेरी चूक को मेरे अलावा शराबखाने का मालिक और वहाँ बैठे कई दूसरे लेखक भी देख रहे थे। शराबखाने की उस लाल

मद्धिम रोशनी में खड़ा हुआ मैं इतना शर्मसार था जैसे किसी ने मेरे अंतर को निर्वसन कर दिया हो और सारी कालिख इधर-उधर बिखेर रहा हो।

अपनी असफलता का बोझ उठाए हुए इस तरह खड़ा रहना मुझे बहुत नागवार गुजर रहा था। आखिरकार बोझिल कदमों से खुद को लगभग घसीटते हुए मैं वहाँ से चला आया और सारी रात रचना मंडी की सूनी गलियों में भटकता रहा। गलियों में लेखकों के बीमार सपने टहल रहे थे। दिन में ये सारे सपने कैद कर लिए जाते ताकि दिनचर्या की गतिशीलता को अपनी बाधाओं से ठेस न पहुँचाएँ। रचना मंडी की रातें अधूरी इच्छाओं की कब्रगाह थी। उनके बीच घूमता हुआ मैं भी एक अधूरी कहानी ही लग रहा था।

सुबह-सुबह मैंने अपनी सामान बाँधा और रचना मंडी से बाहर के बस स्टॉप पर आ गया। मंडी के चारों ओर दूर-दूर तक उजाड़ था। प्रशासन ने बड़ी चालाकी से इसे जन-समुदाय से बहुत दूर बसाया था ताकि मंडी की गहमा-गहमी नागरिकों की जिंदगी में अवांछित हस्तक्षेप न करे।

कोई घंटे भर बाद बस आई। मैं मयसामान अस्त-व्यस्त और थका-हारा बस में चढ़ा। बस में सवार सारे मुसाफिर मुझे देखकर पहले तो मुस्कुराए फिर ठहाका मार कर हँस पड़े।